जनसत्ता

संदेश और चुनौतियां

लखनऊ में सोमवार को कांग्रेस महासचिव प्रियंका गांधी वाड्रा के रोड शो में जिस तरह से भीड़ उमड़ी, उससे पहला संदेश तो यही गया कि अब प्रियंका गांधी ही उत्तर प्रदेश कांग्रेस की नैया पार लगा सकती हैं। प्रदेश में और राष्ट्रीय स्तर पर लोगों को कांग्रेस में कोई उम्मीद दिखाई दे रही है तो वह प्रियंका से ही है। इस रोड शो से यह खुल कर सामने आ गया कि प्रियंका को सक्रिय राजनीति में उतारने का कांग्रेस अध्यक्ष का फैसला दूरगामी नतीजे वाला है। कांग्रेस के लिए इस वक्त सबसे बड़ा संकट यह है कि उत्तर प्रदेश में पिछले तीस साल से पार्टी जिस मरणासन्न हालत में पड़ी है, उसे फिर से कैसे खड़ा किया जाए। प्रदेश या राष्ट्रीय स्तर पर कोई भी नेता अभी तक उत्तर प्रदेश में कांग्रेस को जीवनदान दिलाने में कामयाब नहीं हो सका है। सिर्फ अमेठी और रायबरेली ही कांग्रेस के बचे-खुचे गढ़ के तौर पर रह गए हैं। इसीलिए सारी उम्मीदें अब प्रियंका पर ही टिकी हैं। इस लिहाज से लखनऊ में प्रियंका के पहले रोड शो ने राजनीति का माहौल बदलने का संकेत भी दे दिया है।

लखनऊ में कांग्रेस के पहले रोड शो से निश्चित तौर पर दूसरे दल सकते में होंगे। किसी भी दल को कांग्रेस के ऐसे आगाज की उम्मीद नहीं रही होगी। प्रियंका के काफिले ने पंद्रह किलोमीटर लंबा रास्ता तय किया और उनकी झलक पाने के लिए लोग सड़क के दोनों ओर खड़े रहे। इससे पता चलता है कि प्रदेश में प्रियंका के चुनावी कमान संभालने से कांग्रेस कार्यकर्ताओं और लोगों में कैसा गजब का उत्साह बना है। लोग प्रियंका को दूसरी इंदिरा गांधी मानते हुए कांग्रेस की भावी नेता के रूप में देख रहे हैं। प्रियंका ने रोड शो के दौरान कहीं कोई भाषण नहीं दिया, लेकिन लोगों को यह अहसास कराने में वे कामयाब रहीं कि आने वाले दिनों में प्रदेश की राजनीति में बड़ा बदलाव जरूर लाएंगी। यही जनता की भी उनसे अपेक्षा है जिस पर उन्हें खरा साबित होकर दिखाना है। इस रोड शो के बाद प्रियंका ने सोशल मीडिया पर भी धमाके के साथ प्रवेश किया। ट्विटर पर उनके फॉलोअरों की संख्या डेढ़ लाख से ऊपर निकल गई है। जाहिर है, सड़कों से लेकर सोशल मीडिया तक पर प्रियंका की आंधी है।

लेकिन अब उन्हें जिन हालात से निपटना है वे कोई मामूली नहीं हैं। प्रियंका को पूर्वी उत्तर प्रदेश की जिम्मेदारी सौंपी गई है जहां कांग्रेस की हालत सबसे ज्यादा खराब है। इलाहाबाद, प्रतापगढ़, वाराणसी, मिर्जापुर सहित कई जिलों में एक वक्त में कांग्रेस का खासा दबदबा होता था। लेकिन आज कांग्रेस के पास यहां कुछ नहीं बचा है। हाल में सपा-बसपा ने जो महागठबंधन किया, उसमें कांग्रेस को शामिल नहीं किया गया। ऐसे में प्रदेश में कांग्रेस को अपना जो भी दमखम दिखाना है, वह अकेले ही दिखाना है। हालांकि कांग्रेस ने भी उत्तर प्रदेश में अकेले चुनाव लड़ने का एलान किया है। कांग्रेस के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती प्रदेश में संगठन के कायाकल्प की है। स्थानीय स्तर से लेकर युवक कांग्रेस, एनएसयूआई, किसान प्रकोष्ठ, अल्पसंख्यक प्रकोष्ठ जैसी इकाइयों में जान फूंकनी होगी। एक वक्त में दलित और अल्पसंख्यक कांग्रेस का बड़ा वोट बैंक हुआ करते थे। लेकिन बाद में अल्पसंख्यक समाजवादी पार्टी और दलित बहुजन समाज पार्टी की ओर चले गए। ब्राह्मणों का बड़ा हिस्सा भाजपा के पास आ गया। प्रियंका के लिए सबसे कठिन काम अपने वोट बैंक को फिर से खड़ा करना है। कांग्रेस के लिए यह डगर आसान नहीं है, फिर भी प्रियंका उम्मीद की किरण तो हैं ही।

आग के ठिकाने

दिल्ली में करोलबाग इलाके के एक होटल में लगी आग से एक बार फिर यही जाहिर हुआ है कि शहरों के व्यावसायिक और सार्वजनिक भवनों, भीड़भाड़ वाली जगहों पर किस कदर सुरक्षा इंतजामों में लापरवाही बरती जाती है। जिस होटल में आग लगी, उसमें करीब साठ कमरे हैं। उसमें करीब सौ यात्री ठहरे हुए थे और पंद्रह-बीस होटलकर्मी सेवा में तैनात थे। आग तड़के चार बजे लगी। आग लगने का कारण फिलहाल बिजली के तारों का गरम होकर जल उठना बताया जा रहा है। इस हादसे में करीब सत्रह लोगों के मारे जाने और पैंतीस लोगों के गंभीर रूप से घायल होने की पुष्टि हुई है। लोगों की मौत दम घुटने की वजह से हुई बताई जा रही है। सीढ़ियां लकड़ी की बनी हुई थीं, जो आग की चपेट में आ गई थीं। इसकी वजह से बहुत सारे लोग सीढ़ी के रास्ते नीचे नहीं उतर पाए। कुछ लोगों ने खिड़की से छलांग लगाने की कोशिश की, जिसमें दो लोगों की मौत हो गई। हालांकि घटना की जांच के आदेश दे दिए गए हैं और दिल्ली सरकार ने मृतकों के परिजनों को पांच लाख रुपए मुआवजा देने की घोषणा भी कर दी है। पर समझना मुश्किल है कि होटल में सुरक्षा इंतजामों की अनदेखी को कैसे नजरअंदाज कर दिया गया था!

बड़े शहरों में मुसाफिरों की आवाजाही अधिक होने की वजह से होटल, मोटल, गेस्ट हाउस आदि का कारोबार बड़े पैमाने पर चलता है। दिल्ली के कई इलाकों में, जो रेलवे स्टेशनों, हवाई अड्डे और किसी बाजार या बड़े व्यावसायिक केंद्र के आसपास हैं, संकरी गलियों और बहुत छोटी जगहों पर लोगों ने होटल खड़े कर लिए हैं। इंटरनेट साइटों आदि के जरिए सस्ती दरों पर रुकने-ठहरने की सुविधा उपलब्ध कराने के नाम पर खूब कमाई कर रहे हैं। मगर स्थिति यह है कि उनमें सुरक्षा संबंधी नियमों की खुलेआम धज्जियां उड़ाई जाती हैं। न तो उनकी बनावट अनुकूल है, न उनके पास आपात स्थितियों से पार पाने के इंतजाम हैं। आजकल वातानुकूलित कमरों का चलन है, इसलिए ज्यादातर इमारतें इस तरह बनाई जा रही हैं, जिनमें बाहर की हवा अंदर और अंदर की बाहर जाने तक की गुंजाइश नहीं छोड़ी जाती। चारों तरफ से कांच से बंद होती हैं। करोलबाग के जिस होटल में आग लगी, उसमें भी ऐसा ही था। वातानुकूलित इमारत होने के कारण, जब उसमें आग लगी, तो धुंआ अंदर ही घुमड़ता रहा और दम घुटने से कई लोगों की मौत हो गई।

कायदे से व्यावसायिक और सार्वजनिक भवनों में अग्निशमन, भूकम्प आदि स्थितियों से निपटने संबंधी इंतजामों की नियमित जांच होनी चाहिए। उसी के अनुसार उनका लाइसेंस नवीकृत किया जाता है। अगर करोलबाग वाले होटल की संजीदगी से जांच की गई होती, तो शायद इतना बड़ा हादसा नहीं हो पाया होता। आजकल सार्वजनिक भवनों में आग की स्थिति से निपटने के लिए स्वचालित अग्निशमन संयंत्र लगाना अनिवार्य है। जैसे ही भवन में कहीं धुआं उठता है, उसका अलार्म बजना शुरू हो जाता है। फिर एक निश्चित समय के बाद अग्निशमन संयंत्र चालू हो जाता है, पानी के फव्वारे चलने लगते हैं। अगर करोलबाग के होटल में आग पर काबू पाने में अग्निशमन विभाग को इतनी मशक्कत करनी पड़ी तो जाहिर है कि वहां ऐसा कोई इंतजाम नहीं था। इसलिए होटल में लगी आग के लिए केवल होटल प्रबंधक दोषी नहीं हैं, इसके लिए सरकारी तंत्र भी समान रूप से दोषी है।

कल्पमेधा

यह ठीक ही कहा गया है कि समूह में सिर अनेक होते हैं लेकिन मस्तिष्क एक भी नहीं होता।
-खारोल

कृषि के लिए निर्यात जरूरी

सुविज्ञा जैन

उत्पादन में कई देशों से बहुत आगे होते हुए भी निर्यात में हम पीछे हैं। इसका मुख्य कारण है हमारी निर्यात होने वाली वस्तुओं में विविधता की कमी और ज्यादा कीमत वाले उत्पादों का निर्यात कम होना। मसलन, वैश्विक बाजार में इस समय कृषि उत्पादों में सबसे ज्यादा मांग सब्जियों और फूलों की है। हमारे कुल कृषि निर्यात में ऊंची कीमत वाले उत्पादों का हिस्सा सिर्फ पंद्रह फीसद है, जबकि निर्यात का बावन फीसद हिस्सा गेहूं, चावल और समुद्री उत्पादों का है जिनकी वैश्विक बाजार में आपूर्ति हद से ज्यादा है और कीमत बहुत ही कम।

खेती-किसानी पर सोच-विचार अचानक बढ़ गया है। सिर्फ किसान और सरकारें नहीं शहरों में रह रहे नौकरीपेशा, उद्योग धंधों में लगे और सामाजिक चिंताशील लोग भी कृषि पर विमर्श करते दिख रहे हैं। इससे देश में कृषि पर संकट की तीव्रता पता चलती है। कृषि और किसानों के लिए क्या और कितना किया जाए, इस पर पिछले दो दशकों में सरकारी और गैर-सरकारी स्तर पर खूब विचार-विमर्श हुआ और दोनों ही स्तर पर विशेषज्ञ समितियों की ढेरों सिफारिशें हमारे सामने हैं। लेकिन कृषि सुधार की हर योजना और उपाय की बात देश के सीमित संसाधनों पर आकर अटकती रही है। यह निष्कर्ष निकालना गलत नहीं होगा कि देश के अंदर से कृषि के लिए संसाधन जुटाने की तमाम कोशिशें हो चुकी हैं और शायद इसीलिए कुछ समय से कृषि निर्यात बढ़ा कर बदहाल होती जा रही कृषि को राहत देने की कोशिशें दिख रही हैं। लेकिन वैश्विक बाजार में भारतीय कृषि उत्पादों की स्थिति बेहतर हो नहीं पाई।

भारत शुरू से ही कृषि प्रधान देश है। लेकिन आजाद होते ही भारत के सामने सबसे बड़ा संकट पर्याप्त भोजन की व्यवस्था का ही था। उस समय खाद्य उत्पादन हमारी मांग के हिसाब से बहुत कम था। पहली पंचवर्षीय योजना की शुरुआत में हम सैंतालीस लाख टन अनाज विदेशों से मंगा रहे थे। उसके पांच साल बाद उत्पादन बढ़ा कर हम अपना कृषि आयात घटा कर दस लाख टन तक ले आए। लेकिन तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान दो युद्ध और गंभीर सूखे ने कृषि की कमर तोड़ दी और सन 1966 में भारत को अपनी आबादी की खाद्य जरूरत पूरा करने के लिए एक करोड़ टन अनाज आयात करना पड़ा। संकट से उबरने के लिए तब उन्नत बीजों के इस्तेमाल की योजना से हरित क्रांति की नींव रखी गई थी। आखिर खाद्य आत्मनिर्भरता का लक्ष्य हासिल हुआ और फिर कुछ भारतीय कृषि उत्पादों का निर्यात भी शुरू हुआ। इसमें गेहूं प्रमुख था। उस समय से आज तक भारतीय कृषि उत्पादन औसतन बढ़ता ही रहा। आजादी के बाद पहली पंचवर्षीय योजना की शुरुआत में जो खाद्य उत्पादन करीब पांच करोड़ टन था, वह आज अट्ठाईस करोड़ टन तक पहुंच चुका है। लेकिन कृषि निर्यात उस हिसाब से नहीं बढ़ पाया। इस समय कृषि उत्पादन में भारत दुनिया के शीर्ष पांच देशों में है। लेकिन कृषि निर्यात के मामले में हम वैश्विक सूची में पहले दस देशों में भी नहीं आते।

पिछले साल के कृषि निर्यात के आंकड़े पर नजर डालें तो वाणिज्य मंत्रालय की निगरानी में आने वाले मुख्य तीस क्षेत्रों में सोलह क्षेत्रों का निर्यात घटा है। उन सोलह उत्पादों में आठ कृषि उत्पाद हैं। अंतरराष्ट्रीय बाजार में हमारे कई कृषि उत्पादों की मांग घटी है। इसके कई कारण हो सकते हैं। लेकिन प्रबंधन प्रौद्योगिकी के पाठों के मुताबिक वैश्विक बाजार में किसी उत्पाद की मांग घटने के दो ही कारण हो सकते हैं। या तो बाजार में दूसरे देश भारतीय उत्पाद से बेहतर गुणवत्ता के उत्पाद दे रहे हैं या उनका माल हमसे सस्ता है। सार्वभौमिक नियम यह है कि अगर किसी उत्पाद की आपूर्ति ज्यादा हो और खरीददार सीमित तो प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती है और माल बिकने के मौके कम हो जाते हैं। इसलिए या तो हम अपने उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ाएं या अपने कृषि उत्पाद की लागत को कम करने का इंतजाम करें।

भारतीय कृषि इस समय निर्यात बढ़ाने पर ज्यादा निर्भर इसलिए भी है कि हर साल कृषि पैदावार का रिकॉर्ड टूट रहा है। कई फसलों की उपज भी घरेलू जरूरत से ज्यादा होने लगी है। मसलन पिछले साल गन्ने की रेकॉर्ड पैदावार हुई। इससे तीन करोड़ पंद्रह लाख टन चीनी बनी। जबकि चीनी की घरेलू खपत सिर्फ ढाई करोड़ टन थी। तब सरकार को चीनी निर्यात के लिए चीनी मिलों को ट्रांसपोर्ट सबसिडी देने का एलान करना पड़ा। पचास लाख टन चीनी निर्यात करने का लक्ष्य बनाया गया था। आज तक का मोटा अनुमान है कि तीस से पैंतीस लाख टन चीनी ही निर्यात हो पाएगी। इसी के साथ इस साल की फसल आ चुकी है। इस साल भी चीनी का उत्पादन तीन करोड़ टन से ज्यादा रहने का अनुमान है। ऐसी ही कई दूसरी फसलों की खपत को लेकर सरकार अब कृषि निर्यात को एक बड़े विकल्प के रूप में देख रही है। और इसलिए अब देश के बाहर बाजार तलाशने पर ज्यादा जोर है।

वैश्वीकरण के दौर में बाजार तलाशना इतना आसान नहीं है। हर देश प्रतिस्पर्धा में है। ऐसे में भारत प्रतिस्पर्धा में बने रहने के लिए अभी तक निर्यात पर अलग-अलग सबसिडी देकर अपना माल बाहर बेच रहा था। लेकिन पिछले कुछ समय से भारत पर अंतरराष्ट्रीय मंचों से यह दबाव बन रहा है कि हम अपने जिन उत्पादों का निर्यात बढ़ाने के लिए सबसिडी दे रहे हैं उसे बंद कर दें। विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) में हमारी शिकायत भी दर्ज कराई गई है। लेकिन अगर हम सबसिडी बंद करते हैं तो विदेशों में भारतीय माल के दाम बढ़ जाते हैं। सबसिडी हटाने के लिए दूसरे देशों का तर्क है कि वैश्विक बाजार में सभी उत्पादकों के लिए समान मौके होने चाहिए। सरकार के निर्यात पर सबसिडी दे देने से दूसरे देशों के उत्पाद की बिक्री के मौके घाट जाते हैं। वैश्विक व्यवस्था का यही दबाव हमारे ऊपर है। इधर अपनी अंदरूनी माली हालत के कारण सबसिडी की मदद देकर ज्यादा समय तक अपने माल को टिकाए रखना भी मुश्किल काम है। इसलिए भारत को अपने कृषि उत्पाद को प्रतिस्पर्धा में लाने के दूसरे उपाय सोचने ही पड़ेंगे।

बहरहाल, इसे मानने में कोई हर्ज नहीं है कि अभी तक भारतीय कृषि विश्व बाजार में प्रमुख विक्रेता नहीं बन पाई है। उत्पादन में कई देशों से बहुत आगे होते हुए भी निर्यात में हम पीछे हैं। इसका मुख्य कारण है हमारी निर्यात होने वाली वस्तुओं में विविधता की कमी और ज्यादा कीमत वाले उत्पादों का निर्यात कम होना। मसलन, वैश्विक बाजार में इस समय कृषि उत्पादों में सबसे ज्यादा मांग सब्जियों और फूलों की है। हमारे कुल कृषि निर्यात में ऊंची कीमत वाले उत्पादों का हिस्सा सिर्फ पंद्रह फीसद है, जबकि निर्यात का बावन फीसद हिस्सा गेहूं, चावल और समुद्री उत्पादों का है जिनकी वैश्विक बाजार में आपूर्ति हद से ज्यादा है और कीमत बहुत ही कम। गेहूं और चावल जैसे उत्पादों को निर्यात करने की एक बड़ी वजह यह है कि भारतीय कृषि निर्यात नीति अवशिष्ट निर्यात आधारित है। यानी अभी तक हम उन वस्तुओं के निर्यात पर जोर लगाते आए हैं जो घरेलू खपत पूरा होने के बाद बच जाती हैं। जबकि इस समय वैश्विक मांग को देखते हुए खासकर निर्यात के नजरिए से ज्यादा कीमत वाली फसलें उगाने पर जोर लगाने की जरूरत है।

इसीलिए पिछले महीने वाणिज्य मंत्रालय की तरफ से नई कृषि निर्यात नीति में मोटे तौर पर चार लक्ष्य बनाए गए हैं। इसमें मुख्य लक्ष्य है 2022 तक कृषि निर्यात को दुगना करना यानी तीस अरब डॉलर से साठ अरब डॉलर तक पहुंचाना। निर्यात किए जाने वाले उत्पादों में विविधता लाना और नए बाजार तलाशना। इसी के साथ ज्यादा कीमत वाली फसलों के उत्पादन और निर्यात को बढ़ाना, और राज्यों के लिए वैश्विक बाजार आसानी से पहुंच में लाने के संस्थागत तंत्र को मुहैया करना और निर्यात में आने वाली रुकावटों को कम करना। यानी यह तय हो गया है कि क्या किया जाए। अब देखा जाना है कि इसे किया कैसे जाएगा? कृषि निर्यात के ये उपाय लागू हो पाए तो भारतीय कृषि के लिए यह कदम मील का पत्थर साबित हो सकता है।

अनुभवों की राजनीति

विलास जोशी

यह दुनिया और दुनियादारी बहुत ही अजीब चीज हैं। इसे समझने के लिए एक जिंदगी काफी नहीं हैं, क्योंकि हमारा जीवन दो हिस्सों में बटा है। एक 'किताबी जिंदगी' है तो उसका दूसरा हिस्सा 'अनुभव की किताब'। किताबों से हमें विचार मिलते है, जबकि जिंदगी से अच्छे-बुरे अनुभव। हमें जीवन में अनंत अनुभव मिलते हैं। उनके कुल जमा जोड़ का नाम है- समझ या परिपक्वता। जिंदगी अनुभव से समझी या जानी जाती है।

एक कृषि शास्त्री को उनके शोध ग्रंथ के आधार पर डाक्टरेट की उपाधि मिली। उसके बाद एक दिन वे एक खेत में गए और खेतिहर मजदूर से मिले। बातों-बातों में उन्होंने उससे यह मालूम कर लिया कि उस खेत में कौन-कौन से पेड़ हैं, किस पेड़ पर कौन सा फल लगता है, एक एकड़ जमीन में कितनी फसल उगती है आदि। फिर वे दूसरे गांव गए और एक किसान से मिले। किसान बोला- साहब, आप तो कृषि शास्त्री की उपाधि से विभूषित हैं और खेती-किसानी के बारे में सब कुछ जानते हैं, फिर आपके सामने मैं क्या चीज हूं भला! फिर वे एक खेत में गए और किसान से बोले- मुझे लगता है कि इस पेड़ पर आम नहीं लगेंगे। किसान बोला- साहब, यह तो मैं बहुत पहले से जानता हूं कि इस पेड़ पर आम नहीं लगेंगे क्योंकि यह पेड़ आम का है ही नहीं।

दरअसल, वे कृषिशास्त्री इसके पूर्व कभी खेत-खलिहानों में गए ही नहीं थे। उनको 'कृषि शास्त्री' और 'डाक्टरेट' की उपाधियां किताबों के कारण मिली थीं। फिर इसके पूर्व तक उन्होंने अपनी जिंदगी सिर्फ विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में बिताई थी।

दुनिया मेरे आगे

महात्मा गांधी ने कहा था कि 'ठोकर लगे और दर्द हो तभी मैं कुछ नया सीख पाता हूं'। सच तो अनुभव एक ऐसा रत्न है, जिसका मूल्य रुपए-पैसों और संपत्ति में कभी नहीं आंका जा सकता। जीवन में परिश्रम करने के दौरान कष्ट सहने के बाद ही अनुभव हासिल होते हैं। अनुभव जीवन की सर्वोच्च पूंजी है, यदि उन्हें हम समयानुरूप खर्च करें तो वह और भी बढ़ती जाती है। कबीर दास जी ने कहा भी है कि- 'आतम अनुभव ज्ञान की, जो कोई पूछै बात। सो गूंगा गुड़ खाई कै, कहे कौन मुख स्वाद।।'

जीवन के यथार्थ में व्यथा और वेदना जो अनुभव हमें दे जाती हैं, वह किसी भी विश्वविद्यालय की किताबों में पढ़ने को नहीं मिल सकती। पिछले दिनों मुझे एक व्याख्यान सुनने का अवसर मिला, जिसमें एक दिलचस्प कहानी सुनने को मिली। बनारस में हजारों साल पहले चलन था कि राजा जनता जनार्दन के बीच से ही चुना जाता था। बस शर्त यह होती थी कि पांच साल बाद उसे सिंहासन छोड़ कर नदी के उस पार के भयानक जंगल में चले जाना होता था। वहां जंगली जानवर उसे मार कर खा जाते थे। ये सिलसिला लंबे समय तक चलता रहा। कई लोग राजा बने, तय समय तक राजा का विलासी जीवन जिया और अंत में जंगली जानवरों का शिकार बन उन्हें बेहद बुरी मौत मिली। इस क्रम में एक नाविक को राजा बनने का अवसर मिला। राजा बनते ही उसने पहले अपने पूर्व हुए राजाओं की व्यथा-कथा को समझा। कहते हैं आदमी दूसरों के अनुभवों से भी बहुत कुछ सीख सकता है। उसने भी उनके दारुण अंत से अनुभव लेकर नदी पार के जंगल की सफाई कराने का काम शुरू किया। जब वह जंगल अच्छी तरह साफ हो गया तब उसने आम लोगों के लिए जीवन की आवश्यक वस्तुओं की वहां व्यवस्था भी करा दी। यह देख कुछ लोग वहां जाकर रहने भी लगे। जब उस नाविक का कार्यकाल समाप्त होने के बाद उसे नदी के पार जाना पड़ा, तब उसे एक नया बसा-बसाया राज्य मिला और वह वहां भी राजकाज करने लगा। ऐसा इसलिए संभव हो सका, क्योंकि उसने पिछले राजाओं से सबक सीख कर अपना और दूसरों का जीवन भी सुखमय कर दिया।

यदि हम अपने और दूसरों के कड़वे अनुभवों से सबक लेकर अपने जीवन में सुधार लाते हैं तो यह सब हमारे परिवार और समूचे समाज के लिए एक नया मार्ग प्रशस्त करता है। यदि हम अपने जीवन रूपी खेत में अनुभव के बीज बोएंगे, तो यकीनन खुशियों की फसल लहलहाएगी। अनुभव एक ऐसी अदृश्य दृष्टि है, जो हमें ठोकर लगने के पहले ही सचेत कर देती है कि आगे नुकीला पत्थर है जो हमें नुकसान पहुंचा सकता है।

यदि हम अपने जीवन में सफल होना चाहते हैं तो उसके लिए यह बहुत जरूरी है कि अपने जीवन उद्देश्यों और लक्ष्यों को अपने और दूसरों के अनुभवों की कसौटी पर उन्हें परखें। यही परख आपको अपने अंतिम ध्येय तक पहुंचाने में सहायक होगी। कबीरदास जी की यह बात अनुभव को लेकर ही कही होगी कि- 'कागद लिखै सो कागदी की ब्योहारी जीव। आतम दृष्टि कहां लिखै जित देखै तित पीव।।'

क्रांति की शर्त

इन दिनों कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन लर्निंग, ब्लॉक चेन, इंटरनेट ऑफ थिंग्स और बिग डेटा आदि जैसी उन्नत तकनीक पर आधारित चौथी औद्योगिक क्रांति की बहुत चर्चा हो रही है। कुछ समय पहले प्रधानमंत्री ने भी विश्व आर्थिक मंच के 'चौथी औद्योगिक क्रांति केंद्र' की शुरुआत के मौके पर कहा था कि हमारा देश इस नई क्रांति के लाभ उठाने के लिए तैयार है। यहां गौरतलब है कि पहली औद्योगिक क्रांति पानी व भाप की शक्ति के कारण और दूसरी विद्युत शक्ति के कारण संभव हो पाई जिसकी वजह से बड़े पैमाने पर उत्पादन संभव हो सका। इन दोनों औद्योगिक क्रांतियों के समय भारत दुर्भाग्यवश उपनिवेशवाद का दंश झेल रहा था। उसके बाद तीसरी औद्योगिक क्रांति ने सूचना और प्रौद्योगिकी द्वारा स्वचालित निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया।

भारत के संदर्भ में अगर चौथी औद्योगिक क्रांति की बात करें तो निस्संदेह देश के भीतर हमारी विविधता, वृहद बाजार, विशाल युवा शक्ति, डिजिटल संरचना आदि वे सारी क्षमताएं मौजूद हैं जो देश को विकासशील से विकसित बना सकती हैं। लेकिन इन सबके बावजूद हमारे सामने कई असुविधाजनक प्रश्न भी खड़े हैं। मसलन, क्या कौशल आधारित तकनीकी परिवर्तन नौकरियों को कम करेगा जबकि वर्तमान समय में भारत बेरोजगारी का दंश झेल रहा है? दूसरा, देश की अर्थव्यवस्था का लगभग नब्बे फीसद कार्यबल अनौपचारिक क्षेत्र के तहत कार्यरत है। आधी से अधिक आबादी कृषि और उससे संबद्ध गतिविधियों में संलग्न है। एनएसएसओ की रिपोर्ट कहती है कि देश के कुल कार्यबल में केवल पांच फीसद लोग औपचारिक रूप से प्रशिक्षित हैं, और महज दस फीसद लोग डिजिटल रूप से साक्षर हैं। जैसा कि हम जानते हैं, चौथी औद्योगिक क्रांति, जो उन्नत तकनीक पर आधारित है, उसके संचालन के लिए कौशल विकास पूर्व निर्धारित शर्त है। दूसरी तरफ सरकार द्वारा लागू की गई कौशल विकास योजनाएं विफल क्रियान्वयन की शिकार हैं और केवल अब तक कागजों में सफल हैं। ग्रामीण युवाओं तक ये योजनाएं अब भी नहीं पहुंच पाई हैं।

व्यवहार के धरातल पर देखें तो कई देशों में अनेक ऐसी समस्याएं मौजूद हैं जिनके चलते चौथी औद्योगिक क्रांति के अवसर का लाभ उठाने में हमें अनेक मुश्किलों का सामना करना पड़ सकता है। लिहाजा, इन चुनौतियों का प्रबंधन मानव पूंजी में अधिक निवेश और भारत के जनसांख्यिकीय लाभांश के लिए बफर बनाने, असमानता दूर करने, लिंग भेदभाव और मशीन लर्निंग आदि विषयों में शिक्षित करके बेहतर तरीके से कर सकते हैं। वर्तमान समय भारत के पास अपने भविष्य को आकार देने के लिए स्वर्णिम अवसर है। वह नई औद्योगिक क्रांति के दौर में अधिक लाभ उठा सकता है, बशर्ते नीति निर्माण का केंद्र बिंदु जनसांख्यिकीय लाभांश और तकनीकी परिवर्तन द्वारा उत्पन्न अवसरों को लक्षित करे।

● *पुष्पेंद्र पाटीदार, राऊ, जिला इंदौर*

सब्र का इम्तहान

हर सुबह जैसे ही अखबार हाथ में आता है तो सबसे पहले मुखपृष्ठ की मुख्य खबर और उसके आसपास की कुछ ताजा खबरों पर ध्यान अटक जाता है। देश की राजनीति अपनी सरगर्मियों के साथ खबरों पर छाई रहती है। समय के साथ राजनीति का चेहरा और अंदाज बदल गए हैं। वैसे चुनावों का मौसम न हो, तो भी ऐसा लगता है कि राजनीति अब देश को चलाने की राजनीति नहीं रही। अब यह सिर्फ चुनावी राजनीति हो गई है। मौसम भी चुनावी हो तब तो बात ही और है। अब तो अखबार की पाठक के रूप में मुझे अपनी बेचारगी पर तरस आने लगा है, क्योंकि अब अक्सर मुखपृष्ठ के नीचे का कार्टून देखना और देख कर मुस्कराना भूलने लगी हूं। ऊपर का फोटू, तेवर, घोषणाएं, आलोचनाएं, यही सब उलझा लेते हैं और तब पृष्ठ छह पर जाने की जल्दी होती है ताकि दिमाग और दिल से जुड़ी अच्छी-अच्छी बातें पढ़ने को मिल जाएं, जिससे थोड़ी राहत महसूस हो।

सबसे ज्यादा परेशान करने वाली चीज है चुनाव के मैदान में उतरने वाले हमारे योद्धाओं की भाषा और बेसिर-पैर के तंज। लोकतंत्र, संविधान, कृषि, रोजगार, अर्थव्यवस्था- ऐसे अनेक शब्द हैं जो चुनावी भाषा को गरिमा प्रदान करते हैं। लेकिन यहां तो 'चौकीदार', 'चोर', फलां के 'पचपन साल सत्ताभोग के' और ढिमकाने के 'पचपन महीने सेवा के', यानी ये सब लोग और मीडिया वाले जैसे जनता के सब्र का इम्तहान लेने में लगे हैं। राहुल गांधी से कौन कहे कि रफाल का किस्सा किसी सिरे तक तो पहुंच जाने दें। महीनों पहले ही क्यों चोर-चोर चिल्लाना शुरू कर दिया आपने! प्रधानमंत्रीजी तो खैर सर्वेसर्वा हैं और किसी भी हद तक जा सकते हैं, हदों को लांघ भी सकते हैं! अखबार वालों की भी मजबूरी हम समझते हैं। अपनी परेशानी के लिए इन्हें क्यों दोष दें! खुद अपने ही मन को समझा लेते हैं कि चलो, यह भी बीत जाएगा।

● *शोभना विज, पटियाला*

मौत का नशा

उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड में जहरीली शराब पीने से सौ से अधिक लोगों का मौत के मुंह में चले जाना बेहद दुखद है। अवैध शराब की इतनी बड़ी मात्रा में बिक्री क्षेत्रीय प्रशासन पर प्रश्नचिह्न खड़ा करती है। क्या वाकई इस मामले की जानकारी किसी को नहीं थी? अगर थी तो सख्ती बरतने में देर क्यों हुई? यह मामला और भी बेहद गंभीर हो सकता था। गांव-देहात में अवैध शराब का बिकना आखिर कब बंद किया जाएगा? इस धंधे में शामिल लोगों पर लगाम कसने के लिए सरकार और प्रशासन को सख्ती बरतनी होगी ताकि आगे ऐसी घटनाओं को रोका जा सके। इस घटना से सीख लेकर यदि शराब को पूरी तरह प्रतिबंधित कर दिया जाए तो वह अच्छा निर्णय होगा। शराब पीने से न केवल इसकी लत लगती है बल्कि इसके सेवन के बाद लोग आपा भी खो देते हैं। अगर शराब की बिक्री से मिलने वाले राजस्व के मोह में सरकार हाथ पर हाथ धरे बैठी रहेगी तो भविष्य में इससे भी बड़ा हादसा देखने को मिल सकता है। जनता को भी इस काम में मदद करनी होगी। उसे अपने आसपास हो रहे इस तरह के अवैध धंधों की जानकारी प्रशासन को निडर होकर देनी चाहिए।

● *आकाश कुमार, मेरठ*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com